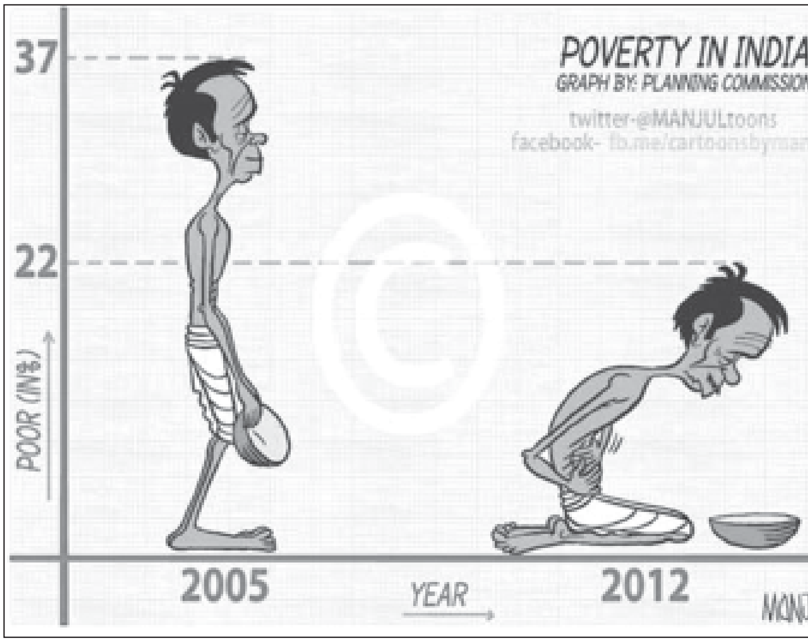


मंजुल टून से साभार

गरीबी पढ़ाना: दृष्टि की गरीबी

सुकन्या बोस

यह लेख अध्ययन के एक विषय-प्रसंग के रूप में गरीबी – जिसे अर्थशास्त्र के पाठ्यक्रमों के अन्तर्गत आम तौर पर शामिल किया जाता है – की जाँच-पड़ताल करने के द्वारा भारतीय स्कूलों में पढ़ाए जाने वाले अर्थशास्त्र की प्रकृति की छानबीन करता है। हमारा उद्देश्य उस चश्मे की, जिसके माध्यम से विकास के मुद्दों को विद्यार्थियों के लिए प्रस्तुत किया जाता है, और ज्ञानशास्त्रीय तथा शैक्षणिक प्रासंगिकता की दृष्टियों से उसकी रूपरेखा की उपयुक्तता

की जाँच-परख करना है। संकुचित प्रत्यक्षवादी पद्धति जिस दृष्टिकोण को प्रश्रय देकर बढ़ावा देती है, उसमें निहित गम्भीर समस्या प्रखर रूप से स्पष्ट है। उसकी खामियाँ हमें ऐसे वैकल्पिक ढाँचों और पद्धतियों की चर्चा में ले जाती हैं, जो मूल रूप से विषयों की सीमारेखाओं का अतिक्रमण करने की इच्छा के परिणामस्वरूप सामने आते हैं।

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा (एन.सी.ई.आर.टी., 2005) जो भारतीय स्कूलों में क्या (और किस प्रकार) पढ़ाया जाना चाहिए इसका खाका खींचने वाला एक महत्वपूर्ण दस्तावेज़ है, को लेकर हुए सामाजिक विचार-विमर्श ने विचारों तथा आकांक्षाओं की विस्तृत चर्चा को जन्म दिया। स्कूलों में सामाजिक विज्ञान पढ़ाने के बारे में इसके कई सुझावों में, एक टिप्पणी अर्थशास्त्र के लिए विशेष रूप से रोचक है:

"सामाजिक विज्ञान के पाठ्यक्रम में अभी तक विकास-सम्बन्धी मुद्दों पर ज़ोर दिया जाता रहा है। सामाजिक विज्ञान के शिक्षण को इस 'विकास' में योगदान देने में व्यक्ति की भूमिका से जोड़ा गया है। ये महत्वपूर्ण हैं पर निष्पक्षता, न्याय, और समाज तथा राज्यव्यवस्था में गरिमा जैसे मुद्दों के मूल्यात्मक आयाम को समझने के लिए पर्याप्त नहीं हैं। इस अन्तर को देखते हुए, हमें अपना ध्यान उपयोगितावाद से आगे बढ़कर समतावाद पर केन्द्रित करने की ज़रूरत है, जो इन मूल्यात्मक चिन्ताओं का समाधान करेगी।" (एन.सी.ई.आर.टी., (2006 सी)पृ. 3)

हालाँकि स्कूलों में अर्थशास्त्र के भारतीय आर्थिक विकास के मुद्दे पर केन्द्रित पाठ्यक्रमों का लक्ष्य केवल अर्थशास्त्र तक ही सीमित नहीं होता, परन्तु इसी कारण से वे इस आलोचना के लिए पर्याप्त आधार प्रदान करते हैं।

स्कूल स्तर के अर्थशास्त्र की संक्षिप्त पृष्ठभूमि की तरह, माध्यमिक (कक्षाएँ 9 से 10) तथा उच्चतर माध्यमिक (कक्षाएँ 11 से 12) स्तर के अर्थशास्त्र के पाठ्यक्रमों ने भारतीय आर्थिक विकास पर ध्यान केन्द्रित करते हुए अपनी स्वयं की रूपरेखाएँ विकसित कर ली हैं, जो अमेरिका की नैशनल काउंसिल ऑफ इकॉनोमिक ऐजुकेशन के उद्देश्यों और उसके द्वारा उपयोग की गई, और संसार के अनेक अन्य देशों द्वारा अपनाई गई, रूपरेखा से भिन्न है। माध्यमिक स्तर पर प्रस्तुत की गई पहली पाठ्यपुस्तक ने अपने अनिवार्य प्रयोजन को इस तरह पेश किया, "अर्थशास्त्र के बारे में ज्ञान को पहचानने और उसका उपयोग करने की बुनियादी योग्यता इतनी अधिक महत्वपूर्ण बन गई है कि उसे केवल पेशेवर अर्थशास्त्रियों के भरोसे नहीं

छोड़ा जा सकता" और इसलिए उसका कार्य "भारतीय अर्थव्यवस्था के ढाँचे तथा विकास से सम्बन्धित विभिन्न समस्याओं और मुद्दों का ज्ञान तथा समझ प्रदान करना" था।

जहाँ अमूर्त आर्थिक अवधारणाओं की बजाय भारतीय स्थितियों और भारत के आर्थिक विकास को समझने के प्रयासों पर ध्यान केन्द्रित करना एक उपयुक्त प्रारम्भिक बिन्दु प्रतीत होता है, वहीं विकास के बारे में जिस दृष्टिकोण को इन पाठ्यपुस्तकों ने मज़बूत बनाने की कोशिश की उसकी ज़्यादातर कोई जाँच-पड़ताल नहीं की गई है। शैक्षणिक मुद्दों के प्रति पेशेवर अर्थशास्त्रियों की उदासीनता के परिणामस्वरूप स्कूल स्तर के अर्थशास्त्र के बारे में बीते वर्षों में बहुत थोड़ा शोध कार्य होता हुआ दिखाई दिया। पाठ्यपुस्तकों में यथास्थिति बनाए रखने के लिए आम तौर पर देखी जाने वाली जड़ता के चलते, बदलते हुए आर्थिक वातावरण के दबावों को समाहित करने के लिए पाठ्यपुस्तकें अपने परवर्ती संस्करणों में आकार में तो बड़ी होती गईं, पर उनकी संरचना के आधार विचारों की कोई पड़ताल नहीं की गई। इसलिए यह कोई अचरज की बात नहीं कि इन पुस्तकों में की गई विकास की व्याख्या (मानवीय विकास के ऐवज में आर्थिक वृद्धि को उसके सर्वोत्तम एवजी विकल्प की तरह स्थापित करना) को ऐसे संकुचित और उपयोगितावादी दृष्टिकोण की तरह देखा गया जो 1960 के दशक के विकासवादी अर्थशास्त्र की याद दिलाता था।

प्रस्तुत शोधपत्र स्कूलों में आजकल पढ़ाए जा रहे अर्थशास्त्र की प्रकृति की जाँच-पड़ताल करने के द्वारा इस आलोचना का समाधान करने का प्रयास करता है। शोधकार्य सघन रूप से एक विशेष विचार-सूत्र की पड़ताल पर केन्द्रित हैः विषय का गरीबी से सम्बन्धित अंश जिसमें समानता, न्याय और गरिमा आदि के मूल्यात्मक आयाम का एकीकरण किए जाने की अपेक्षा बहुत स्वाभाविक रूप से की जा सकती है। इस शोध का उद्देश्य उस चश्मे की जाँच करना जिसके माध्यम से विकास के मुद्दों को विद्यार्थियों के लिए प्रस्तुत किया जाता है, और इस प्रकार प्रस्तुत की गई व्याख्या की भी ज्ञानशास्त्रीय तथा शैक्षणिक प्रासंगिकता की दृष्टि से पड़ताल करना है।

गरीबी के बारे में अध्यायों की समीक्षा (खण्ड-2) से आरम्भ करने के बाद, शोध का मुख्य भाग स्कूलों में किए गए फील्डवर्क पर केन्द्रित है जिसमें कक्षाओं में किए गए अवलोकन तथा सीधे विद्यार्थियों के साथ बातचीत (खण्ड-3) शामिल है। पाठ्यसामग्री - जिसमें गरीबी रेखा, गरीबी का मापन, और गरीबी के अनुपातों पर आधारित गरीबी की वस्तुपरक तुलनाएँ शामिल हैं - का विश्लेषण प्रत्यक्षवादी दृष्टिकोण पर अत्यधिक ज़ोर दिए जाने की पुष्टि करता है। विकास सम्बन्धी साहित्य

में, गरीबी रेखा पर आधारित संकुचित दृष्टिकोण को सशक्त दार्शनिक और ज्ञानशास्त्रीय बुनियाद वाले अधिक सर्वांगीण तथा खुले दृष्टिकोणों के द्वारा चुनौती दी गई है। नीति निर्माण के दायरों में, गरीबी रेखा वाली दृष्टि लम्बे समय से प्रभावी रही है, लेकिन वहाँ भी वह बहसों तथा विवादों में घिरी रही है। स्कूलों में गरीबी पर होने वाली चर्चा, उसके अवधारणात्मक पहलुओं की समस्यायों पर गौर किए बगैर, इसी संकुचित गरीबी रेखा वाले दृष्टिकोण पर बहुत अधिक निर्भर करती है। इस तथ्य के अलावा कि ऐसा करना विषय के प्रति ईमानदार रवैया नहीं दर्शाता, शैक्षणिक उद्देश्यों को पूरा करने के लिए भी प्रत्यक्षवादी दृष्टिकोण में गम्भीर कमियाँ हैं, विशेष रूप से उन सन्दर्भों में जिनमें इस विषय के बारे में विद्यार्थियों तथा शिक्षकों, दोनों के सांस्कृतिक रूप से निर्मित अपनी-अपनी पूर्व धारणाएँ हैं। यह संकुचित निर्धारणात्मक रवैया जिस प्रकार के दृष्टिकोण को इजाज़त देता है और उसका प्रसार करता है, वह विविध प्रकार के प्रमाणों में मुखर रूप से स्पष्ट है, और वह विद्यार्थियों की व्याख्याओं के माध्यम से सबसे अधिक व्यक्त होता है। इसमें लोगों को ज़्यादातर आर्थिक गतिविधि के साधन की तरह देखा जाता है, और गरीबों की आम छवि अज्ञानी, आलसी और विकास के निम्न स्तरों के लिए ज़िम्मेदार लोगों के रूप में चित्रित की जाती है, ये वे धारणाएँ हैं जिन्हें इन पुस्तकों का आधार-ढाँचा चुनौती देने की बजाय उनका पोषण करता है। इसलिए एक समीक्षात्मक और सर्वांगीण ढाँचे की ज़रूरत पर जितना भी ज़ोर दिया जाए वह अधिक नहीं हो सकता। खण्ड-4 थोड़े विस्तार के साथ एक वैकल्पिक ढाँचे के प्रमुख तत्वों की चर्चा करता है, जिसमें इस विषय पर हुए बहुविषयक शोध तथा कार्यविधियों से काफी सहायता ली गई है। यह तर्क दिया गया है कि वैकल्पिक ढाँचा अनिवार्य रूप से ऐसा हो जोः

1. मूल्यात्मक आवश्यकताओं को अपने में एकीकृत करे।
2. चेतन रूप से समाजीकरण को बढ़ावा दे।
3. जीवन्त नीति सम्बन्धी ऐसी बहसों को शामिल करे जो अनेक दृष्टिकोणों को इस तरह अपनाए कि जिससे विकास की नीति एक विवादित क्षेत्र की तरह उभर कर सामने आए।

गरीबी रेखाः कितनी प्रासंगिक?

नीचे दी गई समीक्षा कक्षा-9 तथा 11 के लिए एन.सी.ई.आर.टी. की अर्थशास्त्र की मौजूदा पाठ्यपुस्तकों पर आधारित है। ये किताबें सेन्ट्रल बोर्ड ऑफ सेकेण्डरी ऐजुकेशन (सी.बी.एस.ई.) के, तथा कुछ उप-राष्ट्रीय बोर्डों के अन्तर्गत आने वाले सभी स्कूलों के लिए निर्धारित की गई अधिकारिक पाठ्यपुस्तकें हैं। ये निजी पाठ्यपुस्तकों के लेखकों के लिए भी

नमूने की तरह काम करती हैं। एक विषय सूत्र के रूप में गरीबी का विवेचन कक्षा-9 की किताब में (एन.सी.ई.आर.टी., 2006 ए) तथा फिर कक्षा-11 की किताब में (एन.सी.ई.आर.टी., 2006 बी) किया गया है। आम तौर पर दोनों कक्षाओं में विषय के विवेचन में समानता है और उसमें चार व्यापक क्षेत्रों को शामिल किया गया है:

1. गरीबी क्या है और कौन गरीब हैं?
2. गरीबी का मापन और गरीबों की संख्या
3. गरीबी के कारण
4. गरीबी-विरोधी उपाय तथा कार्यक्रम

पहली बार पढ़ने में ही, हमें पाठ्यपुस्तक में प्रारम्भ में प्रस्तुत किए गए गरीबी के यथार्थवादी चित्रों और पाठ्यांशों में छाए हुए गरीबी रेखा के अवधारणात्मक विचार के बीच में विसंगति का तीखा एहसास होता है। पुस्तक के अध्याय गरीबों के जीवन से लिए गए उदाहरणों के अध्ययनों से आरम्भ होते हैं।

एन.सी.ई.आर.टी. (2006 ए) में दिए गए मामले ग्रामीण गरीबी के सापेक्ष शहरी गरीबी के विशिष्ट अन्तर का चित्र पेश करते हैं, जबकि एन.सी.ई.आर.टी. (2006 बी) में गरीबों की ज़िन्दगियों की तुलना गैर-गरीबों की ज़िन्दगियों से की गई है। इन चित्रणों को बॉक्सों में 'सामाजिक बहिष्करण', 'असुरक्षा' तथा 'गरीबी क्या है' पर दिए गए विद्वत्ता-पूर्ण उद्धरणों की सामग्री के साथ प्रस्तुत किया गया है। परन्तु, अध्याय का अधिकांश हिस्सा गरीबी को नापने के लिए पैमाने के रूप में गरीबी-रेखा के विस्तृत विवरण को समर्पित है। एन.सी.ई.आर.टी. (2006 ए) की पुस्तक 11 पृष्ठों में से, थोड़े नहीं बल्कि 6 पृष्ठ गरीबी रेखा, गरीबी के अनुमान, असुरक्षित समूहों के गरीबी अनुपातों, अन्तर-राज्यीय असमानताओं तथा वैश्विक गरीबी के परिदृश्य की चर्चा करने में लगाती है, और यह पूरी चर्चा आमदनी की गरीबी और गरीबी रेखाओं के सन्दर्भ के भीतर होती है। हालाँकि एन.सी.ई.आर.टी. (2006 बी) की पुस्तक कुछ हद तक अधिक सन्तुलित है, पर उसमें भी पाठ्यांशों में गरीबी की चर्चाओं के केन्द्र में गरीबी रेखा की अवधारणा है।

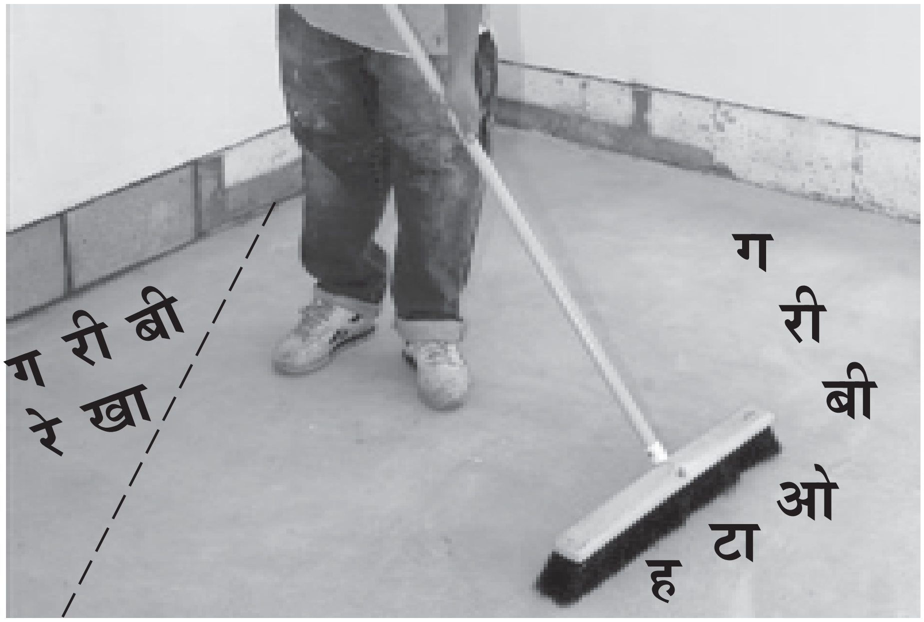
अर्थशास्त्र में यह तथ्य सर्वविदित है कि कार्यप्रणाली तथा अर्थ, दोनों दृष्टियों से गरीबी रेखा की धारणा में गम्भीर समस्याएँ हैं। भारत में वर्तमान में गरीबी का आकलन एक विभेदपूर्ण कैलोरी-मानदण्ड के आधार पर एक गरीबी की रेखा को निश्चित करने के द्वारा किया जाता है। योजना आयोग के एक कार्य दल ने 1979 में गरीबी रेखा को उस प्रति व्यक्ति व्यय-स्तर के रूप में परिभाषित किया जिस पर प्रति दिन प्रति व्यक्ति लिया गया

कैलोरी पोषण ग्रामीण क्षेत्रों में 2400 कैलोरी और शहरी क्षेत्रों में 2100 कैलोरी था। प्रत्येक राज्य में आबादी के जिस समूह के द्वारा प्रति व्यक्ति प्रति दिन कैलोरियों की इतनी मात्रा का नैशनल सैम्पल सर्वे ऑर्गेनाइज़ेशन (राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण संगठन - एनएसएसओ) के 1973 से 1974 तक के सर्वेक्षण के अनुसार - उपभोग किया गया, उनके द्वारा इसके लिए प्रति दिन प्रति व्यक्ति खर्च की गई औसत राशियों को गरीबी रेखाओं की तरह इस्तेमाल किया गया। उपभोक्ताओं के व्यवहार के 1973 से 1974 तक के अवलोकनों के आधार पर प्राप्त की गईं गरीबी रेखाएँ ग्रामीण क्षेत्रों में 49.09 रु. प्रति व्यक्ति प्रति माह, और शहरी क्षेत्रों में 56.64 रु. प्रति व्यक्ति प्रति माह थीं। बाद के वर्षों में इन गरीबी रेखाओं को महज़ उपभोक्ता मूल्य सूचकांकों (कंज़्यूमर प्राइस इंडिसीज़) में हुए परिवर्तनों के आधार पर संशोधित करके अद्यतन बनाया जाता रहा। ये आधिकारिक गरीबी रेखाएँ, जैसा कि भली भाँति जाना-माना तथ्य है, एकदम विपन्नता के स्तरों के करीब हैं। इन गरीबी रेखाओं से प्राप्त किए गए गरीबी के आकलित अनुमानों से अन्य सर्वेक्षणों द्वारा प्रदान किए गए पोषण के आँकड़ों के आधार पर आकलित अनुमानों में भारी अन्तर हैं। पटनायक (2004, 2007) ने प्रमाण सहित तर्क दिया है कि 1973 से 1974 की गरीबी रेखाओं का मुद्रास्फीति के लिए समायोजन करने की बजाय, सही पद्धति यह जाँच करने की होना चाहिए कि क्या इस प्रकार प्राप्त की गई गरीबी रेखाएँ अभी भी पोषण के मानकों को पूरा करने की गुंजाइश देती हैं। 2005 तक, एक ग्रामीण व्यक्ति को 2,200 कैलोरी (एनएसएसओ आँकडे) प्राप्त करने के लिए प्रति दिन 19 रु. की ज़रूरत होती थी, जबकि 12 रु. की आधिकारिक अनुमानित राशि में वह केवल 1,800 कैलोरी प्राप्त कर सकता था। इस प्रकार गरीबी रेखाओं तथा आहरित कैलोरी पोषण के मूल आदर्श मानदण्ड के बीच में चौड़ी खाई है।

एक अन्य समस्या यह है कि व्यक्ति गणना अनुपात इस तथ्य की उपेक्षा कर देता है कि व्यक्ति इस रेखा से थोड़ा-सा नीचे या बहुत नीचे हो सकते हैं; और यह भी कि खुद गरीब लोगों के भीतर भी आमदनी का वितरण बहुत असमान हो सकता है। सेठ इसे सार रूप में इस तरह कहते हैं कि "गरीबी रेखा की अत्यधिक मनमानी और अवरोधक प्रकृति....बहुत-सी गरीबी को अदृश्य बना देती है, गरीबी की समझ को विकृत कर देती है और इस तरह गरीबी को घटाने के उद्देश्य को हानि पहुँचाती है।"

यह अपेक्षा करना स्वाभाविक है कि इन मुद्दों को गरीबी रेखा की चर्चा में समाहित किया जाएगा।

ज़्यादा महत्वपूर्ण बात गरीबी को नापने के लिए स्वयं आमदनी के दायरे की प्रासंगिकता पर सवाल खड़े करना



है। जो उपभोक्ता वस्तुएँ व्यक्ति के अधिकार में होती हैं वे केवल एक साध्य का साधन होती हैं, और वह साध्य जिस तरह के जीवन की व्यक्ति कदर करता है उस तरह का जीवन जीने में समर्थ होना है। भिन्न-भिन्न लोगों तथा समाजों की आमदनी और उपभोग की वस्तुओं को मूल्यवान उपलब्धियों में परिवर्तित करने की उनकी क्षमता आम तौर पर अलग-अलग होती है, उदाहरण के लिए, गर्भवती महिलाओं की विपन्नता बढ़ जाती है क्योंकि उनके लिए रोज़गार को बनाए रखना ज़्यादा कठिन हो जाता है जबकि भोजन की उनकी ज़रूरत तुलनात्मक रूप से अधिक होती है। एक अर्थपूर्ण अवधारणात्मक ढाँचे को इन व्यक्तिपरक समस्याओं का समाधान करना चाहिए। इसलिए हम मूल्यांकन के मापदण्ड की तरह सिर्फ एक गरीबी रेखा को कैसे पर्याप्त मान सकते हैं? हम उसे कहाँ निर्धारित करेंगे?

इसके अलावा, हालाँकि हो सकता है कि हम चुनौतियों से पार पाने के लिए एक साधन के रूप में वास्तविक आय के महत्व को स्वीकार करते हों, परन्तु फिर भी यह तो ज़ाहिर है कि जो व्यक्ति अपराधों और बीमारियों के खतरों से बचने के लिए पैसा खर्च करता है, उसकी स्थिति ऐसे व्यक्ति की तुलना में कम अच्छी होती है जिसे अच्छी सार्वजनिक स्वास्थ्य सेवाओं और सुरक्षा का लाभ मिलता है, और इसलिए जिसे ऐसे खर्चों की कोई ज़रूरत नहीं होती। इसलिए, कामकाज की विशेषताओं का दृष्टिकोण, बस केवल निजी श्रम तथा बाज़ार को ही

नहीं, बल्कि सार्वजनिक सेवाओं के ऐसे लाभों को भी इस हिसाब में शामिल करता है। व्यक्तियों की क्षमताओं वाली पद्धति, जो कामकाज की विशेषताओं के आधार पर विकसित की गई, ने गरीबी की अवधारणा निर्मित करने की प्रक्रिया को, तथा विकास के अधिक व्यापक विमर्श को रूपान्तरित कर दिया है। किसी व्यक्ति की 'क्षमता' का तात्पर्य कामकाज के ऐसे वैकल्पिक संयोजनों से होता है जिन्हें हासिल करना उस व्यक्ति के लिए व्यवहारिक रूप से सम्भव होता है। इस तरह क्षमता एक प्रकार की स्वतंत्रता है; वैकल्पिक कामकाजी संयोजनों को हासिल करने के लिए वास्तविक अर्थपूर्ण स्वतंत्रता (सेन, 1999)। गरीबी में जो बुनियादी विफलता निहित होती है वह व्यक्ति के पास न्यूनतम पर्याप्त बुनियादी क्षमताओं का न होना है। जो गरीबी रेखा गरीबी की इस अपरिहार्य रूप से बहुआयामी प्रकृति तथा व्यक्तिगत विशेषताओं की उपेक्षा करती है, वह गरीबी से सम्बन्धित चिन्ताओं के प्रति वास्तविक न्याय नहीं कर सकती।

यह सच है कि क्षमता की पद्धति पर आधारित विपन्नता की व्यापक धारणा को सटीक परिभाषा में बाँधना, और किसी आधारभूत पैमाने से उसको नापना उस तरह आसान नहीं है जैसा कि आमदनी पर आधारित गरीबी रेखा के साथ है। परन्तु, एक अवधारणात्मक श्रेणी के रूप में यह मूल्यगत आधार-मान्यताओं और गरीबी की वास्तविक तस्वीर को समझने के चश्मे, दोनों दृष्टियों से गरीबी के विचार को एक अधिक अर्थपूर्ण स्तर तक विस्तृत कर देती है। तब फिर स्कूलों में गरीबी रेखाओं की जगह क्षमता वाली पद्धति ने क्यों नहीं ली है? राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005 के द्वारा स्पष्ट शब्दों में विकास के ढाँचे की समस्याओं को व्यक्त किए जाने के बाद भी, इन नई लिखी गई पाठ्यपुस्तकों में कोई खास वास्तविक बदलाव नहीं दिखाई देता। अन्य लोगों के अलावा, ऐपल (2000) ने आधिकारिक ज्ञान के चुनाव के बारे में, तथा एक लोकतांत्रिक पाठ्यक्रम को शिक्षा व्यवस्था में लाना कितना कठिन है, इसके बारे में विस्तार से लिखा है। गरीबी रेखा की पद्धति की गम्भीर समस्याओं के बावजूद, अभी भी रूढ़िवादी नीति निर्माता जमातों में इसका उपयोग जारी है, और यह लक्ष्य-आधारित व्यय कार्यक्रमों की कसौटी बनी हुई है। जो कुछ भी पढ़ाया जाता है वह कतई मूल्य-निरपेक्ष नहीं होता, और शायद यह अपरिहार्य है कि जो ढाँचे अन्तर्निहित व्यक्तिपरक धारणाओं और सुविधासम्पन्न लोगों की खुशहाली की पड़ताल करते हैं, उन्हें सबसे कड़े प्रतिरोध का सामना करना पड़ेगा।

हकीकत यह भी है कि कैलोरी वाले मानदण्डों, उपभोग के खर्चों तथा आमदनी के पैमाने – जिनमें से अधिकांश बातें न तो शिक्षकों और न ही विद्यार्थियों

की पकड़ में आती हैं, पर वे उन्हें प्रभावित ज़रूर करती हैं – समेत की जाने वाली गरीबी रेखा की चर्चा गरीबी के अध्ययन को एक तरह का वैज्ञानिक वस्तुनिष्ठता का आवरण अवश्य प्रदान करती है। शिक्षा की मुख्यधारा के भीतर अर्थशास्त्र को ज़्यादातर एक विज्ञान के रूप में देखा जाता है, और यही वह दृष्टिकोण है जो अक्सर विद्यार्थियों के लिए चित्रित करना चाहते हैं। "हालाँकि अर्थशास्त्र को विशुद्ध विज्ञान की अर्हता प्राप्त नहीं है, पर विडम्बना यह है कि यह वैज्ञानिक पद्धति का, और मिथ्या ठहराए जाने की कसौटी – जिस रूप में कह सकते हैं कि उसे कार्ल पॉपर ने परिभाषित किया था जिनके वस्तुनिष्ठ ज्ञान का सूत्र अर्थशास्त्रियों द्वारा अपनी कार्यप्रणाली में उपयोग किया जाता है – का अवश्य ही पालन करता है" चन्दावरकर, (2007)। अन्य बातों के साथ-साथ, इसके परिणामस्वरूप यथार्थवाद और प्रासंगिकता के विपरीत भविष्यसूचक अर्थशास्त्र और तकनीकी प्रवीणता को अत्यधिक महत्व प्राप्त हो गया है। अपने स्वयं के दायरे में "विवरणात्मक अर्थशास्त्र को भविष्यसूचक अर्थशास्त्र के साम्राज्यवाद का खामियाज़ा भुगतना पड़ा है" (सेन, 1980)। किसी हद तक यह तथ्य अर्थशास्त्र की आम प्रवृत्ति को प्रतिबिम्बित करता है कि स्कूलों की पाठ्यपुस्तकें गरीबी के नैतिक और समतावादी पहलुओं की अनदेखी करती हुई निरन्तर मापन के प्रश्नों में संलग्न दिखाई देती हैं।

गरीबी रेखा के ढाँचे के भीतर, यह अपरिहार्य है कि गरीबी की व्याख्याएँ सीमित दायरे में बँधी होंगी; "आर्थिक प्रगति को बढ़ावा देना तथा आबादी पर नियंत्रण, इन दोनों मोर्चों पर विफलता" और साथ ही "पर्याप्त रोज़गार उत्पादन का अभाव, भूमि और अन्य संसाधनों का असमान वितरण, तथा सामाजिक-सांस्कृतिक कारक, जैसे कि सामाजिक दायित्वों तथा धार्मिक अनुष्ठानों पर बहुत गरीब लोगों के द्वारा भी फिज़ूलखर्ची किया जाना" इनका ही हवाला देते हुए पाठ्यपुस्तक में गरीबी को समझाया जाता है [एन.सी.ई.आर.टी., (2006 ए), पृ. 38]। इसमें गरीबी की पारम्परिक छवियाँ स्पष्ट दिखती हैं, और उतना ही ज़ाहिर अन्तर्निहित नियतिवाद भी है। आनुभविक रूप से, आर्थिक उन्नति और गरीबी के घटने का सम्बन्ध एक अनिर्णीत मुद्दा है। जहाँ आर्थिक उन्नति गरीबी के घटाने में सहायक हुई है, वहाँ इसका कारण यह है कि उन देशों ने प्रगति के लाभों का उपयोग भोजन, स्वास्थ्य सेवाओं, सभी के लिए प्राथमिक शिक्षा के अधिकारों को विस्तृत बनाने के लिए, या जिसे प्रगति के माध्यम से पाई गई सुरक्षा कहा है उसे उपलब्ध कराने के लिए किया है (द्रेज़ एवं सेन, 1989)। इसके अलावा, बड़ी संख्या में ऐसे उदाहरण मौजूद हैं जहाँ आर्थिक उन्नति के द्वारा प्रति व्यक्ति आमदनियों

को बढ़ाने का इन्तज़ार किए बगैर, प्रत्यक्ष सार्वजनिक सहायता देना गरीबी घटाने के लिए ज़िम्मेदार साबित हुआ, उदाहरण के लिए जैसा चीन, क्यूबा, चिली, जमैका, कोस्टा रीका तथा भारत के केरल में हुआ। आर्थिक प्रगति और गरीबी के जटिल सम्बन्ध को समझाने वाली बारीक विभेदों से युक्त ऐसी चर्चा के बिना किया जाने वाला विश्लेषण नियतिवादी होता है।

गरीबी के लिए ज़िम्मेदार एक कारक के रूप में जनसंख्या पर ज़ोर देना माल्थूसियन सोच को परिलक्षित करता है जो जनसंख्या की ताकत को उसके निर्वाह के लिए पर्याप्त उत्पादन करने की धरती की शक्ति से अधिक मानती है। हकीकत में, जनसंख्या वृद्धि के प्रभाव को कम करने वाले कारकों, जैसे कि प्रौद्योगिक आविष्कारों, उत्पादन की बढ़तों, सामाजिक संगठन में हुए परिवर्तनों तथा सरकारी नीतियों में हुए बदलावों, आदि ने यह सुनिश्चित कर दिया कि माल्थूस की भविष्यवाणियाँ कभी घटित न हों। पर फिर भी, माल्थूस का प्रभाव कुछ अकादमिक जमातों और समाज के भीतर बहुत प्रचलित विमर्शों, दोनों में बाकायदा जारी है।

इन अध्यायों के अन्तिम भागों में सरकार के लक्ष्य-आधारित गरीबी-विरोधी कार्यक्रमों, जिनमें स्व-रोज़गार तथा मेहनताने वाला रोज़गार शामिल हैं, की चर्चा की गई है, जिसका अतिशय





महत्व ज़रूर है, पर निश्चित ही वही सब कुछ नहीं है। एन.सी.ई.आर.टी. की पुस्तक (2006 बी) में एक उल्लेख मिलता है कि गरीबी को समझने का एक अन्य दृष्टिकोण हो सकता है, "गरीबी के बारे में एक तीसरा दृष्टिकोण लोगों को न्यूनतम बुनियादी सुविधाएँ प्रदान करना है।" फिर आत्म-प्रशंसा के स्वर में पाठ आगे कहता है किः

"भारत संसार के उन पथ प्रवर्तक देशों में था जिन्होंने विचार किया कि सामाजिक उपभोग की ज़रूरतों – रियायती दरों पर खाद्यान्न का प्रावधान, शिक्षा, स्वास्थ्य, पानी की आपूर्ति तथा सफाई व्यवस्था – के लिए सार्वजनिक व्यय के द्वारा लोगों के जीवन स्तरों को सुधारा जा सकता था। ....यहाँ संक्षेप में यह कहना ज़रूरी है कि अनेक दृष्टियों से भारत ने इसमें सन्तोषजनक प्रगति हासिल की है" (पृ. 74)।

बुनियादी सुविधाओं तथा सार्वजनिक व्यय के सरसरी तौर पर किए गए ज़िक्र और भारत के इस सन्दर्भ में सफलता हासिल करने के बारे में दिए गए बहुत ही विवादास्पद वक्तव्य का मतलब है कि ये महत्वपूर्ण आयाम पूरी तरह से उपेक्षित रहेंगे और गलत समझे जाएँगे जैसा कि खण्ड-3 में कक्षा के क्रियाकलापों के विवरण से प्रगट होता है।

कक्षा के भीतर की दृष्टिः विकास के लिए चुनौती के रूप में गरीबी

इस अध्ययन का क्षेत्र कार्य 2008 से 2009 के अकादमिक सत्र में दिल्ली के दो केन्द्रीय विद्यालयों एस-1 तथा एस-2 में किया गया था। केन्द्रीय विद्यालय अपेक्षाकृत बेहतर ढंग से संचालित होने वाले सरकारी स्कूलों में होते हैं जिनमें प्रशिक्षित शिक्षकों द्वारा नियमित शिक्षण होता है और

जिनमें समुचित गुणवत्ता वाली बुनियादी सुविधाएँ होती हैं। इन स्कूलों के विद्यार्थी समूह में काफी सामाजिक-आर्थिक विविधता होती है।

वे शिक्षिका भूगोल में प्रशिक्षित थीं और वे एस-1 की कक्षा-9 के विद्यार्थियों को सामाजिक विज्ञान पढ़ाती थीं। जब उन्होंने संक्षेप में गरीबी पर दिए गए पाठ को दोहराया तो कक्षा में तनाव-रहित माहौल था। उन्होंने अलग-अलग मापों की तरह पहले आमदनी की गरीबी रेखा की और फिर उपभोग की गरीबी रेखा की बात की, बिना यह जाने कि इस पद्धति में कैलोरी के मानदण्डों को कहाँ रखा जाए। पाठ्यपुस्तक में दिए गए शिवरामन और उसके परिवार के उदाहरण के अध्ययन [एन.सी.ई.आर.टी., (2006 ए), पृ. 34] का हवाला देते हुए यह बताया गया कि गरीबों की पहचान करने के लिए इस पद्धति का उपयोग कैसे किया जाता है। परन्तु, जैसा कि शिक्षिका ने सही बताया, रोज़गार की अनिश्चितता तथा उसके ऋतुओं पर निर्भर रहने के कारण चूँकि आय की जानकारी अधूरी थी, इसलिए यह अभ्यास अधूरा ही रहा।

शिवरामन की कहानी परिवारों के बीच की असमानता, शिक्षा के अधिकारों और भोजन के वितरण में नारी-विरोधी पक्षपात को चित्रित करती है। शिक्षिका ने सरसरी तौर पर इन पूर्वाग्रहों की बात की और फिर चर्चा को मानव संसाधनों की ओर ले गईं। उन्होंने ज़ोर देकर कहा कि लड़कियों की शिक्षा के अभाव के कारण मानव संसाधनों का कम उपयोग हो रहा था और वह 'देश के विकास' को प्रभावित कर रहा था।

बच्चों को शिक्षा देने/न देने के निर्णय की ज़िम्मेदारी ढाँचागत कारकों की बजाय पूरी तरह से शिवरामन के ऊपर रख दी जाने से, गरीबों के लक्षण, जैसे कि लड़कियों को स्कूल न भेजने की प्रवृत्ति, गरीबी को समझाने के लिए पर्याप्त हो सकते हैं। शिक्षिका के गरीबी के आँकड़ों को पढ़ाना उसी दिशा की ओर इशारा करता हुआ प्रतीत हुआ। तालिका-1 भारत में गरीबी के अनुमानों को प्रस्तुत करती है। इसके अनुसार 1973 से 1974 तथा 1993 से 1994 के बीच के अन्तराल में गरीबी के अनुपातों में उल्लेखनीय गिरावट आई, फिर भी, शिक्षिका ने ध्यान दिलाया कि देश में गरीबों की संख्या उतनी ही रही। उन्होंने समझाया कि इस पहेली का उत्तर जनसंख्या की उच्च वृद्धि दर में निहित है, और कहा कि 'जनसंख्या सभी बुराइयों की माँ है'। गरीबी किस कारण से पैदा होती है, इस सवाल की चर्चा में जनसंख्या वृद्धि की नकारात्मक भूमिका फिर से दोहराई गई। कारणों की सूची में जनसंख्या सबसे ऊपर थी, जिसके बाद निरक्षरता, और बेरोज़गारी का ज़िक्र था।

गरीबी के ऊपर बताए गए सभी कारण बृहत-स्तर के कारक प्रतीत होते

हैं। परन्तु फिर भी, कक्षा की पढ़ाई के अनुसार ये और कुछ नहीं बल्कि गरीबों के लक्षण हैं! जनसंख्या गरीबों की बड़े परिवार रखने की प्रवृत्ति का परिणाम है, ठीक उसी प्रकार जैसे कि निरक्षरता उन प्रवृत्तियों का परिणाम है जो गरीबों को अपने बच्चों को स्कूल भेजने से रोकती हैं। इसमें ढाँचागत कारकों का कोई उल्लेख नहीं था। आर्थिक प्रगति के बारे में इसमें एक भी बात नहीं थी, जिस पर पाठ्यपुस्तक में गरीबी का मुख्य कारण बताते हुए ज़ोर दिया गया था। चूँकि शिक्षिका की सहज समझ में निम्न-स्तरीय मानवीय पूँजी निर्माण के कारण गरीबी की निम्न-स्तरीय प्रगति के लिए ज़िम्मेदार होने की बात बैठी हुई थी, इसलिए चेतन/अचेतन रूप से उन्होंने विपरीत दिशा में कारणगत सम्बन्ध को नज़रअन्दाज़ कर दिया था।

यह हमें मिल्टन फ्रीडमैन (1953) की एक अन्तर्दृष्टि की याद दिलाता है, "साधारण जन और विशेषज्ञ, दोनों को ही मज़बूती से पकड़ी हुई मानदण्डात्मक पूर्वधारणाओं के अनुकूल सकारात्मक निष्कर्ष निकालने का, और यदि उनके मानदण्डात्मक निहितार्थ अरुचिकर हों तो वैसे सकारात्मक निष्कर्षों को नकारने का, प्रलोभन अपरिहार्य रूप से होता है"। विषयसूत्र के रूप में गरीबी में अनेकों ऐसी पूर्व-धारणाएँ और रूढ़िवादी छवियाँ निहित रहती हैं जिनका समझ के अनुशासित स्वरूपों से तालमेल नहीं बैठता। ये पूर्व-धारणाएँ अक्सर बहुत हठी होती हैं और उनको बदलने के लिए उन पर बार-बार प्रश्न खड़े करने और ठोस तर्क प्रस्तुत करने की आवश्यकता होती है। हम इस मुद्दे पर खण्ड-4 में वापिस लौटेंगे।

एक अन्य भ्रामक नासमझी गरीबों की अस्वास्थ्यकर और अस्वच्छ जीवन स्थितियों की चर्चा में उभर कर सामने आई। साफ-सफाई तथा साफ पीने के

तालिका 1 - भारत में गरीबी के अनुमान

वर्ष	गरीबी का अनुपात (%)			गरीबों की संख्या (करोड़ में)		
	ग्रामीण	शहरी	योग	ग्रामीण	शहरी	योग
1973 - 1974	56.4	49.0	54.9	26.1	6.0	32.1
1993 - 1994	37.3	32.4	36.0	24.4	7.6	32.0
1999 - 2000	27.1	23.6	23.1	19.3	6.7	26.0

स्रोतः एन.सी.ई.आर.टी. की पुस्तक (2006 ए, पृ. 33) से ली गई तालिका, आर्थिक सर्वेक्षण 2002-2003, वित्त मंत्रालय, भारत सरकार

पानी का अभाव, अस्वच्छ जीवन स्थितियाँ, स्वास्थ्य सेवाओं का न होना – इन सबकी चर्चा गरीबी के परिणामों के रूप में की गई। गरीबी को सिर्फ निम्न स्तर की आय के एक-आयामी रूप में नापे जाने की वजह से, विपन्नता के अन्य प्रकार भी गरीबी के कारण की उपज मान लिए गए। विपन्नता के निवारण के लिए सार्वजनिक व्यय और सार्वजनिक सहारे पर एक चर्चा, जो इस अध्याय से पूरी तरह गायब है, ने यहाँ छिपे हुए कारण-परिणाम सम्बन्ध के आशय को स्पष्ट करके तोड़ दिया होता। क्योंकि स्वास्थ्य, स्कूली शिक्षा, पीने के पानी, सफाई की समुचित सुविधाओं के सार्वजनिक प्रावधान के बिना उचित समझी जाने लायक आय भी नाकाफी होगी।

कक्षा में दिया गया कार्यः गरीबी को समझना महत्वपूर्ण क्यों है?

विज्ञान, वाणिज्य तथा मानविकी विषय धाराओं की कक्षा-11 के विद्यार्थियों के मिले-जुले समूह के साथ बातचीत में विद्यार्थियों के सामने यह प्रश्न रखा गयाः गरीबी को क्यों घटाया जाना चाहिए? यह सवाल पूछने के पीछे हमारा उद्‌देश्य उस चश्मे की एक समझ हासिल करना था जिससे विद्यार्थी गरीबी को देखते हैं।

1. अधिकांश उत्तरों का आशय था कि गरीबी देश के विकास में बड़ी बाधा थी। "गरीबी को कम किया जाना चाहिए क्योंकि यह हमारे देश के पिछड़ेपन का मुख्य कारण है। इसे बेहतर जीवन स्तरों को हासिल करने के लिए कम किया जाना चाहिए" (कक्षा-11, वाणिज्य का विद्यार्थी)। एक अन्य विद्यार्थी कहता है कि "भारत के विकास को बढ़ाने के लिए और हमारी मानवीय पूँजी को सशक्त बनाने के लिए गरीबी को घटाया जाना चाहिए। गरीबी हमारे देश की वृद्धि की राह में बड़ी रुकावट है। यदि व्यक्ति के पास किसी प्रकार के संसाधन (स्वास्थ्य, शिक्षा, आदि जैसे संसाधन) नहीं हैं तो वह उसकी अर्थव्यवस्था में योगदान देने में समर्थ नहीं होता। यही कारण है कि भारत का मुख्य कार्य गरीबी को कम करना है" (कक्षा-11, विज्ञान का विद्यार्थी)। उत्तरों में भारी बहुमत ऐसे उत्तरों का था जो वृद्धि – जिसे विकास का समानार्थी समझा जाता है – की बात भारतीय अर्थव्यवस्था के प्रमुख लक्ष्य के रूप में करते थे, और विकास के सफल यात्रा-पथ पर अग्रसर रहने के लिए मानवीय पूँजी को एक अनिवार्य रूप से आवश्यक घटक मानते थे। गरीबी का निहित अर्थ निम्न स्तर की मानवीय पूँजी का होना था, जिसे वृद्धि को अवरुद्ध करने वाली बाधा की तरह देखा जाता है।

2. कुछ ही विद्यार्थी गरीबी के अलग-अलग आयामों के बीच के सम्बन्ध को पहचान पाए, हालाँकि वे भी एक सीमित अर्थ में यह कर सकेः "गरीबी अकेली नहीं आती। यह अनेक अन्य समस्याओं, जैसे कि कुपोषण, शिक्षा के बहुत कम अवसरों, जीवन के ज़्यादा नीचे स्तरों,

आदि के साथ आती है, और फिर यह देश की अर्थव्यवस्था या देश की प्रति व्यक्ति आय को पूरी तरह प्रभावित करती है" (कक्षा-11, वाणिज्य का विद्यार्थी)।

3. इस तथ्य का मामूली बोध कि गरीबी लोगों के लिए अनिवार्य रूप से पीड़ादायक होती है, जो हमारे जैसे लोकतांत्रिक समाज के लिए अनुचित है, केवल दो उत्तरों में प्रकट होता है। बेहतर तर्कों से युक्त एक उत्तर है कि "एक देश के नागरिकों के जीवन स्तरों को ऊपर उठाने के लिए गरीबी को कम किया जाना चाहिए। यह हमारा कर्तव्य है कि ज़्यादा अच्छे जीवन स्तर के साथ जीने में उनकी सहायता करें। साथ ही, यह हम सभी को जीवन जीने के लिए एक स्वस्थ सामाजिक वातावरण प्रदान करेगा" (कक्षा-11, वाणिज्य की विद्यार्थी)। इस विद्यार्थी को गरीबी से जुड़े कष्ट का और ऐसे कष्ट को दूर करने के प्रति नागरिकों के दायित्व का ज्ञान है, एहसास है, हालाँकि वह गरीबी कम करने के पीछे की उपकरणात्मक प्रेरणा, अर्थात् एक 'स्वस्थ सामाजिक वातावरण' निर्मित करने की ज़रूरत, को भी इसमें जोड़ देती है।

4. नागरिकों की न्यूनतम बुनियादी आवश्यकताएँ पूरी हों यह सुनिश्चित करने की कोई भी सीधी ज़िम्मेदारी विद्यार्थियों ने राज्य के ऊपर नहीं डाली। राज्य की भूमिका को आर्थिक वृद्धि की आकांक्षा के सम्बन्ध में ही देखा जाता है। वास्तव में, अनेक विद्यार्थियों ने लिखने में इस आशय को व्यक्त किया हैः "सरकार की अनेक नीतियाँ गरीबी के कारण बेकार हो जाती हैं, इसलिए इसे कम किया ही जाना चाहिए" (कक्षा-11, वाणिज्य का विद्यार्थी)।

5. सिर्फ एक विद्यार्थी (32 में से) ने नागरिकों की बुनियादी ज़रूरतों के सम्बन्ध में मूलभूत अधिकारों का उल्लेख किया। "किसी व्यक्ति की बुनियादी ज़रूरतों को पूरा करने में उसकी असमर्थता ही गरीबी है। यदि वह अपनी बुनियादी ज़रूरतों को पूरा नहीं कर पाता तो वह अपना जीवन उचित ढंग से व्यतीत नहीं कर सकता। दूसरी दृष्टि से भी, अपनी बुनियादी ज़रूरतें पूरी करना हर व्यक्ति का मौलिक अधिकार है। इसके अलावा, गरीबी एक ऐसी स्थिति है जिससे हर व्यक्ति निकलना चाहता है" (कक्षा-11, कला संकाय का विद्यार्थी)।

गरीबी की विद्यार्थियों द्वारा की गई व्याख्या में संकुचित विकासात्मक दृष्टिकोण के वर्चस्व को असंदिग्ध रूप से पहचाना जा सकता है। गरीबी और समानता के बीच का सम्बन्ध, गरीबी के मानवीय आयाम, तथा मूलभूत अधिकारों के उल्लंघन के रूप में गरीबी, ये पहलू निकलकर तो आए परन्तु उनका ज़िक्र केवल हाशिए की थोड़ी-सी आवाज़ों के द्वारा किया गया। यह केवल संयोग नहीं था कि जिस एकमात्र विद्यार्थी ने अधिकारों के दृष्टिकोण का उल्लेख किया वह

मानविकी विषयों की धारा का था। विद्यार्थियों का विशाल बहुमत गरीबी को केवल उपयोगितावाद के ढाँचे के भीतर ही देखता है।

जिन विचारों को गरीबी की प्रकृति के बारे में विद्यार्थियों की सांस्कृतिक रूप से निर्मित पूर्व-धारणाएँ कहा जा सकता है, उनमें अर्थशास्त्र के पाठ्यक्रमों ने चेतन या अचेतन रूप से अपना योगदान दिया है। अर्थशास्त्र की पाठ्यपुस्तकों में ऐसे प्रश्नों की, जैसे कि आगे दिए गए हैं, कभी भी प्रकट रूप से छानबीन नहीं की जातीः गरीबी पर विचार करना महत्वपूर्ण क्यों है? असमानता का मुद्दा महत्वपूर्ण क्यों है? क्या ये असमानताएँ सामाजिक जीवन के ऐसे स्थाई और अपरिहार्य लक्षण हैं जो मनुष्यों में प्रतिभा तथा योग्यता के अन्तरों को प्रतिबिम्बित करते हैं? या कि ये असमानताएँ हमारे सामाजिक ओहदों और अलग-अलग लोगों को उपलब्ध अवसरों के अन्तरों का परिणाम हैं? तथा, हमें किस प्रकार की अर्थव्यवस्था की तलाश है? मानवीय गरिमा, सामाजिक न्याय तथा समानता जैसे प्रमुख विचारों का कतई कोई उल्लेख किए बगैर गरीबी पर एक समूचे अध्याय का लिखा जाना यहाँ पूरी तरह से स्वीकार्य है।

(...जारी)

सुकन्या बोसः नैशनल इंस्टीट्यूट ऑफ पब्लिक फाइनैन्स एंड पॉलिसी, नई दिल्ली में कार्यरत। इनकी शोध रुचियों में विकास, शिक्षा और वृहत् अर्थशास्त्र जैसे विषय शामिल हैं।
अँग्रेज़ी से अनुवादः भरत त्रिपाठीः पत्रकारिता की पढ़ाई। स्वतंत्र लेखन और द्विभाषिक अनुवाद करते हैं। होशंगाबाद में निवास।

लेख के इस भाग के लिए सन्दर्भ ग्रन्थ इस प्रकार है -

NCERT (2006a) *Economics: Textbook for Class 9*, NCERT, New Delhi.

NCERT (2006b) *Indian Economic Development : Textbook for Class 11*, NCERT, New Delhi.

NCERT (2006c) *Teaching of Social Sciences*, National Focus Group, NCERT, New Delhi.